International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-12-2024, Accepted: 15-01-2025, Published: 30-01-2025
Volume 11, Issue 1, 2025, Page No. 97-102

वेदांत दर्शन में निहित 'अद्वैतवाद' की अवधारणा और उसका हिंदी कविता पर प्रभाव

डा0 नाज़िश बेगम
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, वीमेंस कॉलेज अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
यह शोध–पत्र वेदांत दर्शन की प्रमुख शाखा 'अद्वैतवाद' की अवधारणा और इसका हिंदी कविता पर पड़ने वाले प्रभाव की समन्वित रूप से विवेचना करता है। आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत सिद्धांत — "ब्रह्म सत्यम, जगन्मिथ्या" — न केवल दार्शनिक विमर्श का केंद्र बना, अपितु उसकी छाया मध्यकालीन हिंदी भक्ति काव्य और आधुनिक साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। शोधकर्ता ने अद्वैत के गूढ़ तत्वों को कबीर, तुलसीदास, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और अज्ञेय जैसे कवियों के काव्य में खोजा है, जिनमें ब्रह्म–जीव की एकता, माया का स्वभाव, आत्म साक्षात्कार और मुक्तिपथ जैसे विचार कला की सूक्ष्म भाषा में रूपायित होते हैं। शास्त्र–काव्य की परंपरा को उद्घाटित करते हुए यह लेख दर्शन और सौंदर्य बोध के अंतःसंबंध को रेखांकित करता है। साथ ही, यह रचना मानवीय चेतना, आध्यात्मिकता और कविता के माध्यम से आत्मानुभूति के स्थायी प्रश्नों पर विचार करती है, जिससे हिंदी कविता को एक व्यापक दार्शनिक आधार प्राप्त होता है।

मूल शब्दः अद्वैत वेदांत, शंकराचार्य, हिंदी कविता, भक्ति काव्य, आत्मसाक्षात्कार, शास्त्र–काव्य, माया सिद्धांत, दर्शन और काव्य, वेदांत प्रभाव, भारतीय काव्यशास्त्र

'वेदांत' ज्ञानयोग का एक महत्वपूर्ण स्रोत है; जो व्यक्ति को न केवल ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता है; बल्कि जीवन–जगत के साथ ही साथ उस परम ब्रह्म शक्ति को समझने का अवसर भी देता है। दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि 'वेदान्त' का मुख्य स्रोत 'उपनिषद' ही है; वैदिक साहित्य का अंतिम भाग होने के कारण आरंभ में 'उपनिषद' को 'वेदांत' ही कहा जाता था; बाद में 'उपनिषद' की संज्ञा से विभूषित किया जाने लगा; जिसे वेद ग्रंथो और वैदिक साहित्य का सार भी समझा जाता है । 'उपनिषदों' में वेदों के विचार अधिक परिपक्व रूप में उपस्थित होते हैं। वेदांत के संदर्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री लिखते हैं कि "वेदादि में विधिपूर्वक अध्ययन, मनन तथा उपासना आदि के अंत में जो तत्व जाना जाएरू उस तत्व का विशेष रूप से जहाँ निरूपण किया गया हो; उस शास्त्र को वेदांत कहा जाता है।"[1] 'वेदांत दर्शन' की तीन शाखाएँ सर्वाधिक चर्चित रही हैं– अद्वैत वेदांत, विशिष्ट अद्वैत और द्वैतवाद और इन शाखाओं के प्रवर्तक क्रमशः आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य,और श्री माधवाचार्य को माना जाता है। ज्ञान योग की इन तीन शाखाओं के अतिरिक्त वेदांत की अन्य शाखाएं भी प्रचलित रही हैं; जिनको आचार्य भास्कर,आचार्य बल्लभ, आचार्य चौतन्य, आचार्य निम्बार्क, आचार्य वाचस्पति मिश्र,स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी अरविन्द घोष, स्वामी शिवानंद, स्वामी करपात्री, स्वामी रमण महर्षि, संत ज्ञानेश्वर महाराज, संत तुकाराम महाराज इत्यादि दार्शनिक चिंतको ने वेदांत दर्शन में निहित ज्ञानोपदेशों को विश्वभर में प्रसारित कर उल्लेखनीय योगदान दिया।

भारतीय दर्शन के सर्वाधिक जीवंत दर्शन 'अद्वैतवाद' को प्रतिस्थापित करने में दो मनीषी भाष्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है; एक आदि आचार्य शंकर और दूसरे आचार्य रामानुज। आचार्य शंकर का भाष्य 'शारीरिक भाष्य' और रामानुजाचार्य रचित भाष्य 'श्री – भाष्य' के नाम से विख्यात हुआ। यह कहना तथ्यपरक ही होगा कि भारतवर्ष की सांस्कृतिक, दार्शनिक और साहित्यिक परंपरा में आदि शंकराचार्य का नाम एक ऐसे युगद्रष्टा के रूप में स्मरण किया जाता है; जिन्होंने न केवल वैदिक दर्शन को पुनः जीवंत किया; बल्कि अपनी बौद्धिक – शक्ति और भाषाई – सौंदर्य से उसे जन–सामान्य तक पहुँचाया। आदि शंकराचार्य का जीवनकाल 788 से 820 ईस्वी के मध्य माना जाता है और यह समय भारतीय दार्शनिक परंपरा के अत्यंत उथल–पुथल का समय था; इस काल में भौतिकतावाद, बहुदेववाद और बौद्ध धर्म के विभिन्न रूप अपने चरम पर थे। ऐसे समय में शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत का पुनर्प्रतिपादन कर एक दार्शनिक क्रांति को जन्म दिया। उनके जीवन की सबसे अद्भुत विशेषता यह थी कि उन्होंने मात्र 32 वर्ष की आयु में सम्पूर्ण भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना कर, एक अद्वितीय बौद्धिक और आध्यात्मिक परंपरा की नींव रखी; जिसमें उन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धांत अद्वैत वेदांत की स्थापना की। अद्वैत वेदांत मुख्यरूप से 'ब्रह्म' (परम सत्य) और 'जीव' (आत्मा) की एकता को स्वीकार करता है; जिसके अनुसार संसार माया है, और केवल 'ब्रह्म' ही एकमात्र सत्य है और मनुष्य उस परमात्मा का ही अंश है और एक दिन जीवात्मा को परमात्मा में विलीन हो जाना है; यही सत्य है; चिरजीवी परम ब्रह्म के अतिरिक्त सब मिथ्या है।यही विचारधारा उनके दार्शनिक ग्रंथों के साथ–साथ उनके स्तोत्रों, भजनों और काव्यात्मक रचनाओं में भी प्रतिध्वनित होती है। शंकराचार्य के प्रमुख ग्रंथों में 'ब्रह्मसूत्र भाष्य', 'भगवद्गीता भाष्य', 'उपनिषदों पर भाष्य' तथा 'विवेकचूडामणि', 'भज गोविंदम', 'निर्वाण षटकम', 'सौंदर्य लहरी', 'शिवानंद लहरी', 'दक्षिणामूर्ति स्तोत्रम' जैसी कई रचनाएँ सम्मिलित हैं। इन रचनाओं में न केवल दार्शनिक गहराई है; बल्कि उच्च कोटि की काव्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। शंकराचार्य की प्रमुख रचनाएँ दो प्रकार की मानी जाती हैं— दार्शनिक ग्रंथ (भाष्य) और स्तोत्र–काव्य। दार्शनिक ग्रंथों में वेदांत सूत्रों पर उनके भाष्य प्रमुख हैं; जैसे कि 'ब्रह्मसूत्र भाष्य', 'उपनिषद भाष्य', और 'भगवदगीता भाष्य' लेकिन उनकी काव्यात्मक प्रतिभा उनके स्तोत्रों और लघु काव्य–रचनाओं में सर्वाधिक प्रकट होती है; जिनमें प्रमुख हैं – "भज गोविंदम" जिसे श्मोहमुद्गरश भी कहा जाता है और यह रचना सांसारिक मोह–माया से मुक्ति की शिक्षा देती है। इसकी भाषा सरल एवं संगीतात्मक होने के साथ ही अत्यंत भावप्रवणभी है। यह गीतात्मकता जहाँ एक ओर पाठकों को मन हृदय को भावनात्मक रूप से स्पर्श करती है; तो वहीं दूसरी ओर उन्हें गहन आत्ममंथन के लिए प्रेरित भी करती है। 'निर्वाण षट्का' (आत्मषट्कम) – छह श्लोकों में रचित है; जोकि आत्मा की शुद्ध अवस्था का वर्णन

करती है; तो साथ ही साथ अद्वैत वेदांत के सार को अत्यंत काव्यात्मक शैली में व्यक्त करती है। 'सौंदर्य लहरी' में देवी त्रिपुर सुंदरी की महिमा एवं रूप की सुरम्यता का वर्णन 100 श्लोकों में किया गया है; जोकि काव्य सौंदर्य का एक अनोखा उदाहरण है; जिसमें सौंदर्य, शक्ति और भक्ति का अद्वितीय मिश्रण देखने को मिलता है। 'कनकधारा स्तोत्रम', 'दक्षिणामूर्ति स्तोत्रम', 'शिवानंद लहरी', आदि रचनाएँ शंकराचार्य की भक्ति– भावना, धार्मिक– आस्था और काव्य –प्रतिभा को व्यापक धरातल पर प्रकट करती हैं। शंकराचार्य की उक्त रचनाओं का गम्भीरतापूर्वक विवेचन एवं विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनके दर्शन में तर्क और भाव, ज्ञान और भक्ति, शास्त्र और काव्य के मध्य एक बेहतरीन संतुलन दिखाई देता है और यही संतुलन उन्हें विशुद्ध दार्शनिकों से न केवल अलग करता है बल्कि साहित्यिक परंपरा में एक विशिष्ट स्थान भी प्रदान करता है। उनकी जो रचनाएँ भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से 'शास्त्र–काव्य' की श्रेणी में आती हैं; उन रचनाओं में दर्शन और काव्य एक–दूसरे में घुलमिल जाते हैं और 'निर्वाण षटकम् 'इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इसमें आत्मा की शुद्ध अवस्था, अहंकार से परे स्थिति, और अद्वैत– ज्ञान को एक अत्यंत प्रभावशाली काव्य रूप में व्यक्त किया गया है। दर्शन और काव्य का यह समन्वय इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि दर्शन सामान्यतः बौद्धिक और गूढ़ होता है; जबकि काव्य हृदय से निकलता है और संवेदना से भरपूर होता है। शंकराचार्य ने दर्शन को काव्य की आत्मा से जोड़कर न केवल उसे सरस बनाया बल्कि उसे लोक के स्तर पर संप्रेषणीय भी बना दिया। उनके काव्य में दर्शन केवल एक तात्त्विक सत्य नहीं; बल्कि अनुभूत सत्य है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ पाठकों को आत्ममंथन, आत्मनिष्ठा और आत्म–साक्षात्कार के मार्ग पर ले जाती हैं। इस संदर्भ में स्वामी चिन्मयानंद 'ठींरं ळवअपदकंउ ब्वउउमदजंतल' में लिखते हैं कि "शंकराचार्य ने 'अद्वैत' को केवल बौद्धिक नहीं; बल्कि हृदय का अनुभव भी बनाया; जिसे उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया।"[2]

'अद्वैतवाद' को प्रतिस्थापित करने में आचार्य शंकर की तरह ही रामानुजाचार्य का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। रामानुजाचार्य ने 'विशिष्टाद्वैत' सिद्धांत का समर्थन किया। देखा जाये तो 'विशिष्टाद्वैत' भी एक तरह से अद्वैत वेदांत की ही शाखा है। 'विशिष्टाद्वैत' के अनुसार ब्रह्म (ईश्वर) एक है; लेकिन वह अनेक रूपों में प्रकट होता है। इसलिए ब्रह्मा, जगत, आत्मा तीनो सत्य हैं और वे एक दूसरे से अलग न होकर एक ही हैं; बल्कि एक दूसरे में समाहित हैं। उनका मानना था कि भक्ति और योग के माध्यम से आत्मा परमात्मा में विलीन हो सकती है; जीव 'ब्रह्म ' में पूर्णतः विलय न होकर, भक्ति के द्वारा ब्रह्मा को प्राप्त करके जीवन और मृत्यु के बंधन से छूट जाता है; यही मोक्ष है, यही मुक्ति है। अतः 'विशिष्टाद्वैत' का अर्थ है 'भेद सहित अद्वैत'; अर्थात ब्रह्म एक होते हुए भी जगत और आत्मा के रूप में विशिष्ट रूप में मौजूद है। "रामानुजाचार्य ने वेदांत संग्रहम, 'श्री भाष्यम', गीताभाष्यम्, 'वेदांतसारम', 'वेदांतदीपम', 'नीतिग्रन्थम'[3] इत्यादि रचनाओं में भक्ति को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत कर, उसे दार्शनिक आधार प्रदान किया है; उनके मतानुसार भक्ति का अर्थ पूजा – पाठ या कीर्तन – भजन नहीं बल्कि ध्यान करना या ईश्वर की प्रार्थना करना है; इसीलिये उन्होंने भक्ति को जाति एवं वर्ग से पृथक तथा सभी के लिए संभव माना है।

निस्संदेह भरतमुनि, भामह, दंडी, वामन, आनंदवर्धन और मम्मट जैसे आचार्यों ने रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और औचित्य अदि के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर काव्य के लिए एक निश्चित पैमाना तय कर हिंदी कविता को संवारने और परिमार्जित करने का प्रयास किया है और इस परंपरा को विकसित करने में आदि शंकराचार्य और रामानुजाचार्य आदि दार्शनिक चिंतकों का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है; क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में दर्शन और काव्य दोनों का न केवल अद्भुत समन्वय किया बल्कि श्शास्त्र–काव्यश की एक नई धारा को भी जन्म दिया; जिसका व्यापक प्रभाव हिंदी काव्य एवं भारतीय काव्यशास्त्रपर भी पड़ा। आदि शंकराचार्य की इस काव्य–परंपरा ने भारतीय काव्यशास्त्र को गहराई, दिशा और आध्यात्मिकता प्रदान करने के साथ ही उन्होंने काव्य के अंतर्गत रस, अलंकार, छंद, और दर्शन को एक सूत्र में पिरोकर एक ऐसी शैली प्रस्तुत की जो आज भी अप्रतिम है। उनके काव्य में शास्त्रीय तत्वों की पूर्ति तो है ही; लेकिन इसके साथ ही साथ उसमें आत्मा को झंकृत करने की शक्ति भी निहित है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ संस्कृत साहित्य ही नहीं बल्कि हिंदी कविता के विकास की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। शंकराचार्य की लेखनी ने काव्यशास्त्र में एक नया दृष्टिकोण (innovative vision) प्रस्तुत किया। पहले जहाँ काव्य केवल रस–ध्वनि या अलंकार की दृष्टि से देखा जाता था; उन्होंने उसमें तत्वमीमांसा, आत्मसाक्षात्कार और ब्रह्मज्ञान का समावेश कर अत्यंत व्यापक रूप प्रदान किया। यह कहना उचित ही होगा कि एक तरह से यह 'अध्यात्म–काव्य' की अवधारणा का प्रारंभ था। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार (शब्द और अर्थ की शोभा) को विशेष स्थान प्राप्त है। भामह (7वीं सदी) और दंडी (8वीं सदी) ने काव्य की शोभा अलंकार में मानी थी; जबकि वामन ने रीति को काव्य की आत्मा बताया। शंकराचार्य की रचनाओं का जब हम काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से मूल्यांकन करते हैं; तो उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक, अनुप्रास, यमक, उपमा, श्लेष आदि अलंकारों की समृद्धता स्पष्ट हो जाती है। उनकी 'सौंदर्य लहरी' "तवापादांभोजे नखमणिरुचिंदर्पणयतः, चकास्ते चन्द्रांशुः शशिनि नितरां विम्बति विभोः" छंद में में देवी के रूप का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म, भावपूर्ण और अलंकारिक शैली में किया गया है; जिसमें रूपक, उपमा और अनुप्रास का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इसी प्रकार 'सौन्दर्य लहरी' में ही अन्यत्र छंद में भक्ति और प्रेम के समन्वय के साथ ही साथ छंदबद्धता का अद्भुत मिश्रण दिखाई देता हैः

"शरीरं त्वं शंम्भो–शशि मिहिर वक्षोरुह युगं
त्वात्मानं मन्ये भगवति नवात्मनघम।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभय साधारणतया
स्थित : संबंधो वां समरस प्रानंदपरयो :।।"[4]

'सौन्दर्य लहरी'की भाँति ही 'भज गोविंदम' भी में छंदबद्धता, लय, और सरल भाषा के साथ ही साथ आलंकारिक सौंदर्य के भी दर्शन होते हैं। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित रस–सिद्धांत, विशेषकर शांत और भक्ति रस, शंकराचार्य की रचनाओं में प्रमुखता से परिलक्षित होते हैं। उनकी रचनाएँ नाटकीय न होकर भी पाठकों के मन में शांति और कई भाव–संवेदनाओं को जागृत करती हैं। शंकराचार्य के रचनात्मक स्वरूप को गुण–रीति के परिप्रेक्ष्य में देखें; तो वामन की परिभाषा "रीति गुणात्मक शब्द–व्यवस्था" को वे आत्मसात करते हुए प्रतीत होते हैं। उनकी भाषा में ओज और माधुर्य गुण विशेष रूप से उभरते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में प्रभावशीलता और लालित्य का सुंदर समन्वय हुआ है। जैसाकि ऊपर कहा गया है कि शंकराचार्य की कई रचनाएँ 'शास्त्र काव्य' के अंतर्गत आती हैं और 'शास्त्र काव्य' एक ऐसा काव्य होता है; जिसमें दार्शनिक या वैज्ञानिक विषयवस्तु को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि शंकराचार्य की रचनाएँ इस संदर्भ में आदर्श मानी जा सकती हैं। वे अपने काव्य में जटिल अद्वैत– वेदांत के सिद्धांतों को भाव–समृद्ध कर सौंदर्यपूर्ण भाषा में प्रस्तुत करते हैं। 'निर्वाण षट्कम' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है; जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता को अत्यंत प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया गया हैः

"न मे मृत्यु न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्मो ।
न बन्धुर्न मित्रं : गुरुर्नैव शिष्यंः चिदानन्द –रूपं शिवोऽहम शिवोऽहम॥"[5]

यहाँ दर्शन की गहराई को काव्य की ऊँचाई से जोड़ा गया है। यह शैली पाठकों को बौद्धिक रूप से ही नहीं, भावनात्मक रूप से भी आंदोलित करती है। डॉ. एस.के. दे (S-K- De] History of Sanskrit Poetic) ने भी उल्लेख किया है कि शंकराचार्य जैसे मनीषी काव्य को केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं मानते थे; बल्कि वे उसे आत्म–ज्ञान के माध्यम के रूप में भी देखते थे; इसीलिये उनका काव्य ' शास्त्र–काव्य' कहलाता हैकृक्योंकि उनके दृष्टिकोण की यही विशेषता शास्त्र को जनसुलभ बनाती है।
वैसे तो दर्शन और काव्य का सह–अस्तित्व सदैव से रहा है; किंतु शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और अन्य मनीषी आचार्यों ने इस सह–अस्तित्व को एक नया रूप प्रदान किया। इन आचार्यों ने वेदांत दर्शन में निहित 'अद्वैतवाद' के जटिल दार्शनिक विचारों को अत्यंत सरल, सुंदर और लयबद्ध भाषा में प्रस्तुत किया; जिससे आमजन भी उस दर्शन को आत्मसात कर सके। उनकी रचनाएँ यह बताती हैं कि कविता केवल मनोरंजन का साधन नहीं; बल्कि मुक्ति और आत्मज्ञान का माध्यम हो सकती है; इसी दृष्टिकोण ने परवर्ती अनेक साहित्यकारों को प्रेरणा दी कि वे दार्शनिक चिंतन को भी काव्य में स्थान दें। आदि शंकराचार्य ने भारतीय दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत वेदांत को एक सशक्त वैचारिक परंपरा के रूप में स्थापित किया। उनकी लेखनी में दर्शन और काव्य के यह अद्वितीय समन्वय हिंदी साहित्य पर भी अपना व्यापक प्रभाव छोड़ती है; विशेष रूप से भक्ति काल, मध्य–आधुनिक युग, और छायावादोत्तर युग में; जिनमें शंकराचार्य की विचारधारा और काव्य–शैली की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।
भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में हिंदी कविता ने लोकभाषा में दार्शनिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों को सहज एवं भावपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि शंकराचार्य ने स्वयं संस्कृत में रचना की; लेकिन उनके द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, माया सिद्धांत, और आत्मा–परमात्मा की एकता जैसे विचार भक्ति काव्य में व्यापक रूप से व्याप्त हो गए। कबीरदास, जो निर्गुण भक्ति परंपरा के अग्रदूत माने जाते हैं; उनके अनेक पदों और दोहों में शंकराचार्य की अद्वैतवादी दृष्टि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। संत कवि ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त करते हैं और यही आध्यात्मिक दार्शनिक चिन्तन उन्हें इस ब्रह्मण्ड को समझने का एक व्यावहारिक दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। कबीर का यही दार्शनिक चिंतन उन्हें अद्वैतवाद से जोड़ता है; वह बार–बार प्रश्न करते हैं; "जहाँ दुआरा नाहीं किवाड़ा, तहाँ बैठा संत निवाड़ा।" "मैं कौन? कहाँ से आया? कौन मोहि है बुलाने वाला?" इन प्रश्नों के उत्तर कहीं न कहीं अद्वैत वेदांत में निहित हैं; जिनको भक्त कवि अपने इस दोहे में खोजने का प्रयास करते हैं :
"कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघल द्वीप।
राम तौ घट भीतर रमई रह्या, जो आवै परतीत।।" [6]

शंकराचार्य के अनुसार भी सारे संसार का निर्माणकर्ता निर्गुण निराकार ईश्वर एक है; वही परम् सत्य है और जीवात्मा उस परमात्मा का ही अंश है और जीवात्मा का अंत उस परमात्मा में विलीन हो जाना है। उस अनादि अनंत ईश्वर का वर्णन शंकराचार्य इस प्रकार करते हैं:

"मनो बुद्धयहंकार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र जिव्हे न च घ्राण नेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम॥"[7]
जीवात्मा और परमात्मा के इस अंश –अंशी भाव को कबीरदास इस प्रकार स्पष्ट करते हैं:
"जल में कुंभ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना यह तथ्य कहयो ज्ञानी।।"[8]

भक्तिकाल के कवि जिस परमतत्व का निरूपण अपने काव्य में करते हैं; वह कहीं न कहीं निर्गुण –निराकार, अगम– अगोचर परम सत्य की और संकेत करता हुआ प्रतीत होता है; वे इस परमतत्व (ब्रह्म) को उसी प्रकार सर्वव्यापी मानते हैं; जिस प्रकार फूलों में खुशबू, तिलों में तेल, लकड़ी में अग्नि आदि। जिसका वर्णन वह इस प्रकार करते हैं :
"संतौ ऐसा राम, कोऊ जानै जानन हारा। टेक
ज्यूँ जल मैं प्रतिबिम्ब देखीए, दरपन नाहीं छाया।
दूधौ घृत, काष्ट जिम पावक, ज्यूँ तिल तेल समानै।
पिंडे जीव सीव ऐसे सब मैं, जानें जान सुजानै।।"[9]

भक्तिकालीन अन्य कवियों की भांति ही कबीरदास भी बार ईश्वर के नामस्मरण पर बल देते हैं। 'सुमिरन को अंग' में सम्पूर्ण भक्ति का सार हरि के नाम का जाप करने को कहते :
"भगति भजन हरि नाउ है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बांचा, कर्मना, कबीर सुमिरन सार।।
चिंता तौ हरि नाऊँ की, और न चिंतवै दास।
जो कछु चिंतवै राम बिनु, सोई काल के पास।। "[10]

कबीर के "राम" कोई सगुण देवता नहीं है; बल्कि निर्गुण ब्रह्म है, जो सबके भीतर है। इसीलिये वह कह उठते हैं कि
"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं।
सब अंधियारा मिट गया, दीपक देखा माहीं॥"[11]

यह कथन शंकराचार्य के "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ही ब्रह्म हूँ) जैसे अद्वैत सूत्र की गूंज करता है। कबीर का ईश्वर एक है; जोकि घट– घट व्यापी है, निर्गुण, निराकार, निर्विकार और अजन्मा है; वह अनादि है, अनंत है। ईश्वर की इस विराट सत्ता को कबीर अपने दोहे में इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

"अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाक़ी डार।
त्रिदेव शाखा भयो, पात भयो संसार" [12]

निर्गुण भक्त कवि ही नहीं बल्कि सगुण भक्त कवि भी ईश्वर की इस विराट सत्ता को स्वीकार करते हैं। सगुण भक्त कवि तुलसीदास भी परमात्मा का प्रधान रूप निर्गुण ही मानते हैं; इसीलिये अपने आराध्य सच्चिदानंद रूप श्री राम के विराट स्वरूप की कल्पना करते हुए कह उठते हैं :
"नहिं कल्पना राम के चरित की।"[13]

इन पंक्तियों में 'सच्चिदानंद' स्वरूप की व्याख्या अप्रत्यक्ष रूप से शंकराचार्य की ब्रह्म–परिभाषा से मेल खाती है। तुलसीदास की रचनाओं में 'ज्ञान और भक्ति' जो समन्वय मिलता है; वह वेदांत दर्शन का प्रभाव भी माना जा सकता है। शंकराचार्य ने 'सौंदर्यलहरी ' में त्रिपुरसुंदरी को सृष्टि की मूल शक्ति, कविता की प्रेरणा, और ब्रह्मज्ञान की जननी के रूप में चित्रित किया है; उसी प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को धर्म, करुणा और न्याय का प्रतीक बनाया। दोनों में प्रतीकों का उच्च स्तरीय दार्शनिक प्रयोग है। तुलसीदास की रामचरितमानस सगुण भक्ति का महान ग्रंथ है; परंतु इसमें भी कहीं न कहीं अद्वैत वेदांत के दार्शनिक दृष्टिकोण की झलक मिल ही जाती है; उन्होंने अपने आराध्य राम को सगुन और साकार रूप में माना है; पर देखा

जाये तो उनकी भक्ति का भी मूल उद्देश्य मुक्ति और आत्म साक्षात्कार ही है; यही कारण है कि तुलसीदास की कविताओं में लयात्मक सहजता और समन्वयवाद के साथ ही साथ गहन दार्शनिकता भी मौजूद है। शंकराचार्य की भांति ही भक्त कवि भी यह स्वीकार करते हैं कि सारा भेद माया का है। माया महा ठगनी को मोहजनित भ्रम मानते हैं जोकि कहीं न कहीं शंकराचार्य के मायावाद की प्रतिध्वनि है। इस माया महा ठगनी के जाल में फँस कर ही जीवात्मा परमात्मा से अलग हो जाती है। माया ने ऋषियों और तपस्वियों काभी तप भंग कर दिया; लेकिन जिसको सही अर्थों में ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है; वही इस मायाजाल को काटकर उस परम् ब्रह्म की अनुभूति कर पाता है; कबीर कहते हैं :

"कबीर' माया मोहनी, जैसी मीठी खांड।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड।।"[14]

सांसारिक मोह–माया से मुक्ति की सीख 'भज गोविंदम' की इन पंक्तियों में बड़े ही सरस और प्रभावशाली शब्दों में दी गयी है; जोकि न केवल मध्यकालीन भक्त कवियों का स्मरण कराती हैं बल्कि दार्शनिक एवं बौद्धिक होने के साथ ही साथ आचरणपरक और भावनात्मक भी है :

"जाति लोभस्त्वं न करेति पापं
लोभः सदा दूषयते चित्तं।
लज्जां विहाय संतमभीक्ष्णं
भज गोविन्दं, भज गोविन्दं॥"[15]

लोभ काम, मद, अहंकार आदि दूषित वृत्तियों के मायाजाल को काटकर संसार रूपी इस भव सागर को ईश्वर की भक्ति के माध्यम से ही पार किया जा सकता है; इसीलिये आदि शंकराचार्य न केवल ईश्वर की महिमा का गुणगान करते हैं; बल्कि नाम स्मरण पर भी बल देते हैं और भक्त को बार –बार ईश्वर के नाम का जाप करने के लिए प्रेरित करते हैं :

"भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणम॥"[16]

आदि शंकराचार्य की इस प्रकार की रचनाएँ एक ओर जहाँ धार्मिक और दार्शनिक उपदेश देती हैं; तो वहीं दूसरी ओर साहित्यिक दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं। यही कारण है कि उनके ग्रंथों का प्रभाव न केवल भारतीय काव्यशास्त्र पर परिलक्षित हुआ बल्कि हिंदी काव्य पर भी रूपांतरित हुआ और यह प्रभाव कहीं प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है, तो कहीं परोक्ष रूप में। वैसे तो सिद्ध और नाथ साहित्य में भी इस प्रकार की रचनायें और उक्तियाँ मिलती हैं किन्तु विशेषकर मध्यकालीन हिंदी साहित्य में, जब भक्ति आंदोलन अपने चरम पर था; शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों ने कई संत कवियों को प्रभावित किया। कबीरदास, तुलसीदास, रामानंद, सूरदास' कुंम्भनदास आदि कवियों की रचनाओं में अद्वैत की भावभूमि स्पष्टतः दिखाई देती है। उन्होंने आत्मा और परमात्मा की एकता, माया के जाल, और मुक्ति के मार्ग जैसे विषयों को अपनी कविता में स्थान दिया, जो सीधे शंकराचार्य की विचारधारा से प्रेरित थे। शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत में ब्रह्म सत्य,जगत मिथ्या, जीव एवं ब्रह्म की एकता में माया बाधा जैसे सिद्धांत भक्ति–काव्य के दार्शनिक आधार बन गए। भक्ति आंदोलन के संतोंकृकबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदिकृने भक्ति को आत्मा की मुक्ति का मार्ग बताया; जोकि प्रत्यक्ष रूप से शंकराचार्य के अद्वैत– दर्शन से ही प्रेरित था। शंकराचार्य ने एक व्यवस्थित दर्शन के रूप में प्रतिपादित किया। इसी प्रकार तुलसीदास की रामचरितमानस में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का जो समन्वय मिलता है, वह भी शंकराचार्य की शिक्षाओं से अनुप्राणित है। शंकराचार्य ने भक्ति को केवल भाव नहीं, बल्कि ज्ञान के साथ जोड़ा। यह एक श्ज्ञान–आधारित भक्तिश है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के मिलन की अनुभूति होती है, न कि केवल इंद्रियों की पूर्ति। यह कहना गलत नहीं होगा कि उनकी रचनाएँ इस समन्वय का प्रतीक हैं।

भक्ति काल के बाद हिंदी कविता पुनः शास्त्रीयता और आधुनिक बौद्धिकता की ओर बढ़ी। संस्कृत परंपरा के विद्वान काव्यशास्त्रियों और दर्शन में पारंगत कवियों ने शंकराचार्य की विचारधारा को नए रूप में प्रस्तुत किया। जगन्नाथदास रत्नाकर भानु जी ने संस्कृत काव्यशास्त्र की अवधारणाओं को हिंदी में व्यवस्थित करने का प्रयास किया। उन्होंने अलंकार, रस, रीति, और औचित्य के सिद्धांतों को हिंदी साहित्य में स्थापित किया। शंकराचार्य की तरह उन्होंने भी दार्शनिक सामग्री को सौंदर्य के साथ प्रस्तुत करने पर बल दिया। उनके लेखन में दर्शन और भाषा का वैसा ही संतुलन देखा जा सकता है;जैसाकि शंकराचार्य के स्तोत्रों में मिलता है। छायावाद के कवि आत्मा, सौंदर्य, और रहस्यात्मकता को केंद्र में रखते हैं; जिसमें कहीं न कहीं शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन की झलक दिखाई देती है। छायावादी कविताओं में भी ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति की यह अद्वैत भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है; इस सन्दर्भ में जयशंकर प्रसाद की 'आंसू', 'लहर', 'कामायनी', सुमित्रानंदन पंत कृत 'मौन निमंत्रण'', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा की रहस्यवादी कविताओं और प्रगीतों की दर्शनात्मक भाषा और बिंब योजना शंकराचार्य की निर्विकल्प ब्रह्म–चेतना की स्मृति दिलाती है। छायवादी सुमित्रानंदन पंत सम्पूर्ण प्रकृति में उस परम सत्ता की अनुभूति करते हैं इसीलिये वह 'निराकार को आकारों में देखूं, ध्वनि में मौन और मौन में ध्वनि' को अपने काव्य पटल पर चित्रित करते हुए कहते हैं :

शून्य विश्व के उर में केवल
सांसों का आना –जाना,
तूने ही पहले बहु दर्शिनी।
गाया जागृति का गण,
श्री सुख सौरभ का नभचारिणि।
गूंथ दिया तब ताना – बाना।
निराकार तम मानो सहसा
ज्योति पुँज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत जाल में,
धर कर रूप नाना" [17]

'कामायनी' महाकाव्य में वेदांत, स्मृति, और प्रतीकवाद का गहन प्रयोग हुआ है। श्मनुश और श्श्रद्धाश के संवादों में आत्मा, बोध और ब्रह्म का द्वंद्वात्मक चित्रण किया गया है। 'कामायनी ' में 'स्मृति' का संकेत शंकराचार्य की आत्मसाक्षात्कार की अवधारणा के समकक्ष दिखाई पड़ता है। जयशंकर प्रसाद का यह कथन अद्वैत दर्शन में 'नित्य ब्रह्म' की अवधारणा से मेल खाता है; "मनुष्य एक ही सतत चौतन्य है, जो परिवर्तनशील है।"[18] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वैष्णव धर्म के अनुयायी थे; भगवा विष्णु के रूपों में उनकी अडिग आस्था थी;तदुपरांत भी वह मानते हैं कि 'ज्योतिपुंज स्वरूपा परम शक्ति' एक ही है; "मेरे सामने अचानक प्रकाश का एक महासमुद्र दिखाई दिया; देखते –देखते उस प्रकाश ने एक निश्चित रूप ग्रहण किया – एक त्रिभंगी मूर्ती माथे पैर मोर –पंख, हाथ में वशीं और लकुट, कटि में पीतांबर, वक्षस्थल पर वैजयंती माला, कंधे पर कमरे . जी में आया की मध्युग के कवि के कंठ में कंठ मिलाकर चिल्ला उठूं – या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।"19

इसी प्रकार जहाँ एक ओर महादेवी वर्मा की कविताओं में निहित भक्ति–रस और अद्वैतात्मक पीड़ा की झलक शंकराचार्य के भक्ति और वैराग्य दोनों पक्षों को दर्शाती है; तो वहीं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का मानवतावादी दर्शन और रहस्यवाद (मिस्टिसिज़म) भी

वेदांत दर्शन के अद्वैतवाद से जुड़ता हुआ प्रतीत होता है; निराला को भी पूरे जग का एक ही तार दिखाई पड़ता है :

"जग का एक देखा तार !
कंठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर झंकार !
बहु सुमन, बहु रंग, निर्मित एक सुंदर हार,
एक ही कर से गुँथा,उर एक शोभा –भार !
गंध –शत अरविन्द –नंदन विश्व –वंदन –सार,
अखिल – उर –रंजन निरंजन एक अनिल उदार !" [20]

निराला शंकराचार्य के वेदांत दर्शन की अद्वैत परम् सत्ता की सतत सत्य,अनादि निर्मल, सकल सुख विस्तार की थ्योरी को तो स्वीकार करते हैं; लेकिन जगत मिथ्या है, इस तथ्य से सहानुभूति नहीं रखते और यहीं से वह कर्मवाद और स्वामी विवेकानंद के नव्य वेदांत से प्रभावित होते हुए दिखाई देते हैं; इसलिए निराला को न इस संसार से मुक्ति और मोक्ष की कामना है और न ही परलोक में कोई स्वर्ग पाने की परिकल्पना बल्कि उनका सारा संघर्ष और सारी भक्ति इसी संसार को स्वर्ग बनाने के लिए है; यही कारण है कि वह अपने भक्तिपरक गीतों और कविताओं में 'विश्व होकर रहे स्वर्ग सुस्थान' की भावना का आह्वान करते हैं। आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कविताओं में नेवी वेदांत की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है; जिसमेंवः माया का स्वागत करते हुए कहते हैं :

"स्वागत स्वागत मेरी माया!
मैंने तुम में सब कुछ पाया !
निविण नीलिमामय प्रशांत अद्भुत आडम्बर शून्य !
मेघों का क्रीड़ास्थल बिजली के सुलास्य की भूमि
यह विराट सुविशाल चड़ताम व्योम तुम्हारी चिकुर छाया
स्वागत स्वागत मेरी माया !"[21]

छायावाद के बाद की कविताओं में भी शंकराचार्य के आध्यात्मिक और वेदांत दर्शन के प्रभाव की झलक मिलती है। विशेष रूप से अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताएँ। इनकी कविताएँ आधुनिक, आत्म–मंथन और दार्शनिक गहराई से युक्त हैं; जिनमें आत्मा और अस्तित्व के साथ ही असीम परम सत्य की खोज की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। आधुनिक कवियों ने जिस प्रकार से कविता को आत्म अनुभूति का माध्यम बनाया; वह कहीं न कहीं शंकराचार्य के "ज्ञान के माध्यम से मुक्ति" के दर्शन से मेल खाता है। नयी कविता में व्यक्त रहस्यवाद (मिस्टिसिज़्म) ईश्वर की विराटता के साथ ही साथ मनुष्य की महत्ता को भी स्वीकार करता है; क्योंकि मनुष्य भी उस विराट, असीम और सर्वशक्तिमान का ही एक अणु है। 'रहस्यवाद' कविता में अज्ञेय जी लिखते हैंः

"मैं भी एक प्रवाह में हूँ –
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की और उन्मुख होना नहीं है
मैं उस असीम शक्ति से संबंध जोड़ना चाहता हूँ
अभिभूत होना चाहता हूँ–
जो मेरे भीतर है।
शक्ति असीम है– मैं शक्ति का एक अनु हूँ
मैं भी असीम हूँ।
एक असीम बूँद असीम समुद्र को अपने भीतर
प्रतिबिंबित करती है,
उस असीम अणु, उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित
करती है
अपने भीतर समै लेना चाहता है।
उसकी रहस्यमयता का परदा खोलकर उसमें मिल जाना
चाहता है–
यही मेरा रहस्यवाद है।"[22]

गंभीर विवेचन के उपरांत ज्ञात होता है कि 'अद्वैत वेदांत दर्शन' का प्रभाव साहित्य की अन्य विधाओं के साथ ही साथ हिंदी कविता पर भी कालान्तर में गंभीर एवं व्यापक रूप से पड़ा है। यह प्रभाव कहीं प्रत्यक्ष रूप से तो कहीं परोक्ष रूप में प्रदर्शित होता है। उक्त विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि आदि शंकराचार्य और रामानुजाचार्य की काव्य–दृष्टि और दार्शनिक भावना हिंदी कविता के तीनों प्रमुख युगों कृ भक्ति, पुनर्जागरण और आधुनिकता कृ में अनवरत गति से प्रवाहित होती रही है। भक्ति काल के संतों ने जहाँ उनकी विचारधारा को लोकभाषा में आत्मसात किया; तो वहीं मध्य–आधुनिक कवियों ने उनके दर्शन को काव्यशास्त्र में पिरोया। मध्यकालीन कवियों की भांति ही आधुनिक कवियों ने भी आत्मा और ब्रह्म की एकता को कविता का विषय बनाकर शंकराचार्य के अद्वैतवाद और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत दर्शन का विश्वव्यापी स्तर पर प्रसार किया। भक्त कवियों की भाषा की सरलता और भावनात्मकता बाद के कवियों को भी प्रेरणा देने वाली सिद्ध हुई। शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने दार्शनिक तत्व मीमांसा को काव्यात्मक सौंदर्य के साथ समाहित किया और यह स्पष्ट किया कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और संसार, माया की रचना है। इस बोध को उन्होंने संस्कृत की कवित्व–युक्त भाषा में इस प्रकार ढाला कि वह न केवल विद्वानों के लिए ग्राह्य हो, बल्कि इन रचनाओं में शिव, देवी, ईश्वर, आत्मा और माया जैसे तत्वों का वर्णन इस तरह किया गया है कि वे पाठक के भावजगत को स्पर्श कर इस संसार को समझने का एक दृष्टिकोण भी देते हैं। 'अद्वैतवादी– दर्शन' भक्ति, या एक ईश्वर के प्रति प्रेम एवं समर्पण की भावना या विचार पर आधारित है और इस समर्पण से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर की दृष्टि में सभी प्राणी समान हैं और जो सच्चे मन से परब्रह्म की भक्ति व उपासना करेगा; उसी को ईश्वर की अनुभूति होगी; 'हरि को भजै, सो हरि को होय' (कबीरदास); अब यह भक्ति ईश्वर के सगुण साकार रूप में हो या निर्गुण निराकार रूप में; दोनों का मूल तत्व एक ही परम ब्रह्म है। 'अद्वैतवाद ' में निहित यही ' मानवतावाद' सभी मनुष्यों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है और यही वेदांत दर्शन का सार है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. उदयवीर शास्त्री, वेदान्त दर्शन का इतिहास (वेदान्तविषयक बहिरंग–परीक्षात्मक मौलिक ग्रन्थ), संस्करणः 2002, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली–11006। पृ.01
2. चिन्मयानंद, स्वामी। (2020)। भज गोविन्दमः टीका सहित। चिन्मय प्रकाशन। पृ 0 21] Internet Archive- [2020] November 8- Internet Archive- https://archive-org/details/bhaja–govindam–swami–chinmayananda/page/21/mode/2up
3. Bhagavathi- [2016] August 28 शरणागति गद्य. https://divyaprabandham-koyil-org/indeÛ-php/2016/08/saranagathi–gadhyam-hindi/
4. शंकराचार्य, आदि। (अनिर्दिष्ट वर्ष)। सौन्दर्य लहरी (श्लोक 34)। संस्कृत स्तोत्र संग्रह। https://vignanam-org/devanagari/soundarya-lahari-html
5. आदि शंकराचार्य, निर्वाण षट्कम (छंद 5), गुरुदेव सिद्धपीठ प्रकाशन। https://sanskritforus-com/na–me–mritu–shanka–na–me–jatibhedeh/
6. हजारी प्रसाद, द्विवेदी, कबीरः ग्रंथावली, साखी (कस्तूरियाँ मृग कौ अंग, दोहा – 4
7. आदि शंकराचार्य, निर्वाण षट्कम (छंद 1), गुरुदेव सिद्धपीठ प्रकाशन। (https : //www bhaktibharat-com)
8. हजारी प्रसाद, द्विवेदी कबीरः ग्रंथावली, पृ0 48 ।

9. राघव दास, भक्तमाल – (चतुरदास कृत टीका सहित, संपा0 अगरचन्द नाहटा, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1965,पृ 0 सं0 175
10. मध्यकालीन काव्य–संग्रह, केंद्रीय संस्थान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा, संस्क0 2007, पृ० 09
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीरः ग्रंथावली (साखी) ।
12. वही
13. तुलसीदास. रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
14. ांइपतकें ंउंतनरंसं. बवउ
15. आदि. शंकराचार्य, भज गोविन्दम्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
16. वही
17. सुमित्रानंदन पंत. युगांत. भारत सरकार प्रकाशन विभाग, संस्करण अज्ञात। कविताः परिवर्तन (पंक्ति 17)
18. जयशंकर.प्रसाद,. कामायनी
19. हजारीप्रसाद द्विवेदी,कल्पनागत, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,सातवां संस्करण, १९७६, पृ ० 52
20. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, गीतिका, राजकमल प्रकाशन,संस्करण 1992, पृ0 54
21. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली –11, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्क0 1981, पृ0 38
22. महफ़िल (2021, ब्जवइमत 15). रहस्यवाद – सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' डमीपिस- https://mahfil-in/rahasyavaad–agyeya–hindi–poem